Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

कर्मप्रवचनीय-विवेक

ज्ञानेन्द्र सापकोटा[9]

अवतरण

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय को अपने सूत्रों में समेटने का कार्य जितनी कुशलता से भगवान् पाणिनि ने किया है। वह एक अभूतपूर्व रहा है और भविष्य में भी असम्भावित रहेगा। उनके सूत्रों की वैज्ञानिकता सागर में भगवान् कात्यायन और भगवान् पतंजलि भी डुबकी लगाते ही रह गये। कुल तीन हजार नौ सौ तिरासी सूत्रों में सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय को समेट लेना एक अमानवीय कार्य ही है, जिसके लिये भगवान् शंकर की पूर्ण कृपा उनके ऊपर रही है –ऐसा पुराणों में उल्लेख मिलता है। यह लघुकाय ग्रन्थ केवल छोटे–छोटे आठ अध्यायों में विभक्त है तथा प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। इसके अध्याय पाद एवं सूत्रों का जो विभाग है तथा पादों में सूत्रों का क्रम एवं संख्या है, वह सब एक वैज्ञानिक ढंग से दिया गया नियत स्वरूप है। कुछ सूत्र केवल क्रम पाद अध्याय आदि के विभाग के कारण तत्तत् सूत्रों में आने वाले वैशिष्ट्य को आलोकित करने के लिये ही पाणिनि ने बनाये हैं। जैसे– **'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'[1], 'असिद्धवदत्राभात्'[2], 'पूर्वत्रासिद्धम्'[3], 'न मु ने'[4]** इत्यादि। संक्षेपतः भाषा को व्याकृत करने के उद्देश्य से पाणिनि ने कुछ अपने पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। उसी क्रम में प्रथमाध्याय के चतुर्थ पाद में कर्मप्रवचनीय संज्ञा की गई, जो कि कुल 17 सूत्रों द्वारा अलग–अलग अर्थ की प्रतीति को निमित्त मानकर उपसर्गों में से ही 11 उपसर्गों में प्रवृत्त हैं। आनुपूर्वी समान होते हुए भी पाणिनीयशास्त्र में उन उपसर्गों को उपसर्ग न कहकर कर्मप्रवचनीय कहा जाता है। ऐसे में उपसर्ग और कर्मप्रवचनीय में भेद का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

विषय–प्रवेश

'कर्मप्रवचनीयाः'[5] यह अधिकार सूत्र है, जिसका स्वदेश में कोई अर्थ नहीं है और जो उत्तर सूत्रों में अन्वित होकर अर्थविशेष का लाभ कराता है। कर्मप्रवचनीयपद उत्तर सूत्रों में जाकर विधेय संज्ञा के रूप में अन्वित होता है अर्थात् उत्तर सूत्रों की विधेयाकांक्षा को शान्त करने के लिये यह अधिकार सूत्र है। **'संज्ञा नाम यतो न लघीयसी'** इस भाष्यवचन के अनुसार लघ्वर्थ

[9] शोध छात्र व्याकरण विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अर्थात् लाघव के लिये संज्ञा की जाती है, जो कि टी, घु इत्यादि की तरह छोटी होनी चाहिये, परन्तु यहाँ पर पाणिनि ने महती संज्ञा की है, जो कि अन्वर्थप्रयोजनिका है। इसलिये कर्मप्रवचनीय शब्द का यौगिक अर्थानुसन्धान किया जाना चाहिये, जो कि इस प्रकार है।

कर्मप्रवचनीय शब्दार्थ

कर्म शब्द यद्यपि व्याकरणशास्त्र में पारिभाषिक ही प्रायः लिया जाता है, जो **'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'** इत्यादि सूत्र से परिभाषित है। तथापि कहीं–कहीं लौकिक कर्मपदार्थ का भी ग्रहण करते पाणिनि दिखाई देते हैं। जैसे– **'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' 'कर्मवत्कर्मणातुल्यक्रियः'** इत्यादि सूत्रों में। इसके लिये विनिगमना **'उभयगतिरिह भवति'**[6] यह परिभाषा के रूप में दिया जाता है। अतः प्रकृत सूत्र में भी यद्यपि **'कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः'** इस सिद्धान्त के अनुसार, कृत्रिम अर्थ को ही लेकर प्रवृत्त होना चाहिये, तथापि **'उभयगतिरिह भवति'** इस सिद्धान्तानुसार कर्मपद क्रियापरक ही है, न कि कर्मसंज्ञकपरक। प्रोक्तवन्तः इस अर्थ में बाहुलक के कारण भूतकालिक कर्त्ता अर्थ में अनियर् प्रत्यय हुआ। **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** सूत्र के कृत्य पदबोध्य अनियर् प्रत्यय की बहुलता से प्रवृत्ति इसी सूत्र से बोधित है। अतः कर्म = क्रियां प्रोक्तवन्तः इति कर्मप्रवचनीया इस विग्रह में **'कर्मप्रवचनीयाः'** पद बनता है। इसका अर्थ होता है, जो क्रिया को कह चुके हों, उन्हें कर्मप्रवचनीय कहते हैं। इसका तात्पर्य निकला कि अभी वर्तमान में कर्म = क्रिया को द्योतन नहीं करते हैं। पहले ही कर चुके हैं। कर्मप्रवचनीय का कार्य जैसाकि भर्तृहरि ने भी कहा है–

क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य च वाचकः।
नापि क्रियापदाक्षेपी सम्बन्धस्य तु भेदकः।।[7]

यह कर्मप्रवचनीय क्रिया का द्योतक नहीं है, जैसाकि उपसर्गों में क्रिया द्योतकत्व देखा जाता है। यथा– **'अनुभूयते सुखम्',** यहाँ पर अनु उपसर्ग के द्वारा 'भू' धातु का अनुभव अर्थ द्योतित किया जाता है, वैसे कर्मप्रवचनीय क्रियाविशेष का द्योतन नहीं कराते हैं। जैसे– षष्ठी विभक्ति सम्बन्ध को कहती है, वैसे सम्बन्ध को भी कर्मप्रवचनीय नहीं कहते हैं, क्योंकि द्वितीया विभक्ति ही सम्बन्ध को कह देती है। फिर उसको कहने के लिये कर्मप्रवचनीय प्रवृत्त नहीं होते हैं। जैसे– **'प्रादेशं विपरिलिखति'** इस स्थल में **'प्रादेशं विमाय परिलिखति'** इस प्रकार का विवरण होने से विशब्द का विमाय अर्थ हो जाता है अर्थात् मानक्रिया का आक्षेपक हो जाता है।[8] वैसे क्रियान्तर का आक्षेपक भी हम कर्मप्रवचनीयों को नहीं मान सकते हैं। ऐसा करने पर कारक विभक्तित्व की आपत्ति आ जायेगी। अतः कर्मप्रवचनीय क्या कार्य करते हैं? इस जिज्ञासा में यही कहते हैं कि जो द्वितीया के द्वारा सम्बन्ध कहा जाता है, उसी सम्बन्ध को विशेषात्मना व्यवस्थापित करते हैं। उदाहरण के लिये **जपमनु प्रावर्षत्**', यहाँ पर जप सम्बन्धी वर्षा है। ऐसा सामान्य रूप से अवगत होने पर अनुशब्द द्वितीया विभक्ति से लब्ध सम्बन्ध को **'लक्ष्यलक्षणभाव'** रूप विशेषात्मना प्रतीत कराते हैं। भर्तृहरि ने यह बात कर्मप्रवचनीयों के लिये सामान्यतः कही है, जबकि कहीं–कहीं क्रियाविशेष के द्योतक भी कुछ स्थलों की कर्मप्रवचनीयों को देखा जाता है। जैसे– 'सुः पूजायाम्', 'सुसिक्तम् सुस्तुतम्', 'अरितिक्रमणे

च', 'अतिदेवान् कृष्णः' इत्यादि उदाहरण हैं। यहाँ सेचन क्रिया में पूजितत्त्व सु के द्वारा द्योतित किया जाता है। एवमन्यत्र भी समझ लेना चाहिये।

इस सूत्र का अधिकार 'अधिरीश्वरे' तक जाता है। कर्मप्रवचनीय संज्ञा गत्युपसर्ग संज्ञा की अपवादिका है, जिससे 'सुस्तुतम्', 'सुसिक्तम्' इत्यादि स्थलों में उपसर्ग संज्ञा के कारण **'उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्'**।[9]

इस सूत्र से उपसर्ग में विद्यमान निमित्त से परे धात्ववयव स को मूर्धन्यादेश की आपत्ति नहीं आती है। अतः सिद्धान्तकौमुदीकारभट्टोजीदीक्षितप्रभृति सभी आचार्यों ने भी **'गत्युपसर्गसंज्ञापवादः'**[10] कहा है। किञ्च इससे क्रियायोग कर्मप्रवचनीयों में भी है ऐसा ज्ञान होता है। अब यह विचार आता है कि पूर्व में ही कहा गया है कि उपसर्गों की तरह यह क्रियान्तर का द्योतकादि नहीं होता है तो **'जपमनु प्रावर्षत्'** यहाँ पर क्रिया के योग के न होने से कैसे गत्युपसर्ग संज्ञा की प्राप्ति होती है? क्योंकि गति संज्ञा और उपसर्ग संज्ञा 'गतिश्च', 'उपसर्गाः क्रियायोगे' इन सूत्रों से होती हैं, जो कि क्रिया के योग में ही होती हैं। प्रकृत में वैसे क्रियायोग के न होने से कैसे गत्युपसर्ग संज्ञा की प्राप्ति होगी? कहते हैं– **'पर्जन्यो जपमनुप्रावर्षत्'**। यहाँ पर निशमन क्रिया गम्यमान है। उस निशमन क्रिया का योग होने से गत्युपसर्गसंज्ञा की सम्भावना थी। यहाँ गति संज्ञा और उपसर्ग संज्ञा का अपवादत्व कथन इसी कारण से सार्थक हो जाता है, परन्तु अब यह शंका होती है कि क्रिया का योग है तो कर्म संज्ञा होने से ही जप शब्द से द्वितीया सिद्ध है। क्योंकि उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जाती है? इसका उत्तर यह है कि यहाँ पर केवल निशमन क्रिया के साथ सम्बन्ध क्रियाकारकभाव रूप नहीं प्रतीत हो रहा है, अपितु निशमन प्रयुक्त हेतुत्वरूप सम्बन्ध प्रतीति विषयीभूत है। तादृश सम्बन्ध को द्वितीया नहीं कह सकती। अतः कर्मप्रवचनीय संज्ञा द्वितीया विभक्ति के लिये आवश्यक रही, जिससे द्वितीया के द्वारा सम्बन्ध सामान्य कहा गया, जिसकी निशमनप्रयुक्तहेतुत्व के रूप में अनुशब्द ने द्योतन किया, जिससे सकलेष्टसिद्धि हो जाती है, बल्कि निशमन प्रयुक्त हेतुत्व सम्बन्ध के रहने से द्वितीया की प्राप्ति न होकर तृतीया की प्राप्ति अवश्य हो जाती, जिसको वारण करने के लिये कर्मप्रवचनीय संज्ञा अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ पर **'जपमनुनिशम्य देवः प्रावर्षत्'**[11] इस अर्थ का बोध होने से **'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च'**[12] सूत्र से प्राप्त पञ्चमी के बाध करने के लिये कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जा रही है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि 'ल्यब्लोपे' सूत्र कर्म में लगता है और यहाँ पर कर्मत्व की विवक्षा ही नहीं है। अतः पञ्चमी कथमपि प्राप्त नहीं हो सकती।

अधिकारावधि

कर्मप्रवचनीय संज्ञा का अधिकार 'अधिरीश्वरे'[13] सूत्र तक जाता है। 'विभाषा कृञि'[14] यह सूत्र भी कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने के लिये ही है, परन्तु 'अधिरीश्वरे' का ही प्रपञ्च होने के कारण 'अधिरीश्वरे' पर्यन्त आया अधिकार

'विभाषा कृञि' में भी प्राप्त हो जाता है। अतः 'विभाषा कृञि' तक अधिकार माना जाता है। उससे आगे 'लः परस्मैपदम्' 1.8.99 सूत्र है, जिसमें विधेय संज्ञा 'परस्मैपदम्' के रूप में विद्यमान है। अतः विधेय संज्ञा की आकांक्षा शान्त करने के लिये प्रवृत्त कर्मप्रवचनीयाधिकार आगे नहीं बढ़ता है।

इस प्रकार कर्मप्रवचनीयाधिकार में 1.4.83 से 1.4.98 तक 16 सूत्र आते हैं जो कि कर्मप्रवचनीय संज्ञा करते हैं।

प्रादिगण में कुछ प्रादियों की ही कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है। जोकि अनु, उप, अप, परि आङ् प्रति अभि, सु, अति, अपि ग्यारह हैं।

संज्ञा का फल

''या या संज्ञा सा सा फलवती'' इस न्याय से कर्मप्रवचनीय संज्ञा का भी फल क्या है ऐसी जिज्ञासा बनती है। कर्मप्रवचनीय संज्ञा करके अधिकतर स्थलों में **''कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया''**[15] इस सूत्र से द्वितीया का विधान किया जाता है। जिन सूत्रों से विहित कर्मप्रवचनीय संज्ञक के योग में द्वितीया विभक्ति होती है वे सूत्र इस प्रकार हैं–

1. अनुर्लक्षणे 1.4.84
2. तृतीयार्थे 1.4.85
3. हीने 1.4.86
4. उपोधिके च 1.4.87
5. लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः 1.4.90
6. अभिरभागे 1.4.91
7. अतिरितिक्रमणे च 1.4.95।

इस प्रकार कुल सात सूत्रों के द्वारा की गयी कर्मप्रवचनीय संज्ञा द्वितीया विभक्ति की प्रयोजिका है। इसमें 'उपोधिके च' सूत्र से उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जाती है। जिसमें से हीनार्थ की प्रतीति होने पर ही द्वितीया होती है। अधिकार्थ की प्रतीति होने पर तो परत्वात् अथवा अपवादत्वाद् ''यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी'' इस सूत्र से सप्तमी होती है।

कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी भी होती है, जिसका विधायक सूत्र है ''यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी।' सप्तमी प्रयोजक कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने वाले सूत्र निम्न हैं–

1. उपोधिके च 1.4.87
2. अधिरीश्वरे 1.497

इस प्रकार सप्तमी प्रयोजक कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने वाले दो सूत्र हैं। जिसमें से 'उपोधिके च' सूत्र से अधिकार्थ की प्रतीति रहने पर जो कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जाती है वह ही सप्तमी की प्रयोजिका है। चकार से जो हीनार्थ की प्रतीति रहने पर कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है उसके योग में द्वितीया कही गई है।

कर्मप्रवचनीय के योग में पञ्चमी का विधान किया जाता है। इस पञ्चमी के प्रयोजक कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने वाले सूत्र निम्न हैं–

1. अपपरी वर्जने 1.4.98
2. आङ् मर्यादावचने 1.4.89

3. प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः 1.4.92

इस प्रकार आहत्य तीन सूत्रों से विहित कर्मप्रवचनीय संज्ञा पञ्चमी विभक्ति की प्रयोजिका है, जिसमें से **''अपपरी वर्जने''** आङ् मर्यादावचने इन दो सूत्रों से विहित कर्मप्रवचनीय के योग में **'पञ्चम्यापाङ्परिभिः'**[16] सूत्र से पञ्चमी विभक्ति की जाती है। **''प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः''** इस सूत्र से विहित कर्मप्रवचनीय संज्ञा के योग में **'प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्'**[17] इस सूत्र से पञ्चमी विभक्ति की जाती है।

कर्मप्रवचनीयों के योग में विभक्तियाँ होती हैं यह तो ठीक है, परन्तु कोई सूत्र विभक्ति के अलावा और कार्य मात्र के लिये भी कर्मप्रवचनीय संज्ञा करते हैं जैसे– षत्वाभाव। षत्वाभाव के लिये भी कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जाती है। षत्वाभाव के प्रयोजक कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने वाले सूत्र निम्न हैं–

1. सुः पूजायाम् 1.4.94
2. अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु 1.4.96

इन दो सूत्रों से किये जाने वाली कर्मप्रवचनीय संज्ञा षत्वाभाव की प्रयोजिका है। भाव यह है कि **'सुसिक्तम्' 'सर्पिषोऽपि स्यात्'** इत्यादि उदाहरणों में **''उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्'' ''उपसर्गप्रादुर्भ्या– मस्तिर्यच्परः''** इत्यादि सूत्रों से उपसर्गस्थ इण् कवर्ग से परे तत्तत् धात्ववयव स को मूर्धन्य प्राप्त होता है जिसको रोकने के लिये उपसर्ग संज्ञा की अपवादभूता ''सु'', ''अपि'' इन उपसर्गों की कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जाती है। जिससे सु और अपि में उपसर्गत्व बाधित हो जाता है। अतः उपसर्गस्थ इण्कवर्ग से परे न होने के कारण धातुओं के स को मूर्धन्यादेश नहीं हो पाता।

''लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः'' सूत्र से वीप्सा की विषयता रहने पर जो कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है वह भी मूर्धन्यादेशाभाव की प्रयोजिका है। **'वृक्षं वृक्षं प्रति सञ्चति'** यह उदाहरण देते हुए भट्टोजिदीक्षित प्रभृति आचार्यों का भी यही आशय है। प्रकृत लक्ष्य में वीप्सा को द्योतित करने के लिये **'नित्यवीप्सयोः'** सूत्र से द्वित्व हुआ है। वृक्ष शब्दों में द्वितीया सेकक्रियानिरूपित कर्मत्वाश्रय होने के कारण है। ऐसी स्थिति में प्रतिशब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने का प्रयोजन केवल सिञ्चति में प्रति उपसर्ग के इण् से परे सिञ्चति का आद्यावयव सकार को मूर्धन्यादेश रोकना ही है, जो कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने के कारण उपसर्ग संज्ञा के बाध होने से उपसर्गस्थ निमित्त न मिलने पर **''उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभ– तिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्''** इन दो सूत्रों से विधीयमाना और **''लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु''** इस सूत्र के वीप्सा पद के द्वारा विधीयमाना और कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। इसके साथ में 'अभिरभागे' सूत्र में भी वीप्सा की विषयता रहने पर जो अभि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा की जाती है वह भी मूर्धन्याभाव की ही प्रयोजिका है। इस प्रकार चार सूत्र मूर्धन्याभाव की प्रयोजिका कर्मप्रवचनीय संज्ञा को करते हैं।

कर्मप्रवचनीय संज्ञा का फल निरूपण प्रसङ्ग में **'अधिपरी अनर्थकौ'**

'विभाषा कृञि' इन दो सूत्रों के द्वारा किये संज्ञा का फल अवशिष्ट रह जाता है। जिसका फल है **'कुतोध्यागच्छति', 'कुतः पर्यागच्छति'** इत्यादि स्थलों में गति संज्ञा का बाध करके **''गतिर्गतौ''**[18] सूत्र से प्राप्त निघात को रोकना। तथा 'विभाषा कृञि' के द्वारा की गई संज्ञा का फल **'यदत्र मामधिकरिष्यति'** इत्यादि स्थलों में गतिसंज्ञा का बाध करके **'तिङि चोदात्तवति'**[19] सूत्र के द्वारा सम्भावित निघात को रोकना है।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपसर्ग संज्ञा को बाँधकर कर्मप्रवचनीय संज्ञा करने के निम्न फल संकलित हुए–

1. द्वितीय विभक्ति
2. सप्तमी विभक्ति
3. पञ्चमी विभक्ति
4. षत्वाभाव
5. निघाताभाव

सन्दर्भ सूची

1. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 1/4/2
2. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 6/4/22
3. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 8/2/1
4. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 8/2/3
5. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 1/4/83
6. परिभाषेन्दुशेखर, 9
7. वाक्यपदीयम्, 2/204
8. परमलघुमञ्जूषा–निपातार्थ प्रकरण
9. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 8/3/65
10. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी कारकप्रकरण
11. तत्त्वबोधिनी द्वितीयाकारक
12. वार्तिक, 1474–1475
13. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 1/9/47
14. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 1/4/98
15. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 2/3/8
16. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 2/3/10
17. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 2/3/11
18. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 8/1/70
19. पाणिनीयाष्टाध्यायी, 8/1/71